श्रीमद् भगवदगीता – चौथा अध्याय

अनुक्रम

चौथे अध्याय का माहात्म्य 1
चौथा अध्याय: ज्ञानकर्मसन्यासयोग 3

चौथे अध्याय का माहात्म्य

श्रीभगवान कहते हैं- प्रिये ! अब मैं चौथे अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ, सुनो| भागीरथी के तट पर वाराणसी(बनारस) नाम की एक पुरी है| वहाँ विश्वनाथजी के मन्दिर में भरत नाम के एक योगनिष्ठ महात्मा रहते थे, जो प्रतिदिन आत्मचिन्तन में तत्पर हो आदरपूर्वक गीता के चतुर्थ अध्याय का पाठ किया करते थे| उसके अभ्यास से उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया था| वे शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों से कभी व्यथित नहीं होते थे|

एक समय की बात है| वे तपोधन नगर की सीमा में स्थित देवताओं का दर्शन करने की इच्छा से भ्रमण करते हुए नगर से बाहर निकल गये| वहाँ बेर के दो वृक्ष थे| उन्हीं की जड़ में वे विश्राम करने लगे| एक वृक्ष की जड़ मे उन्होंने अपना मस्तक रखा था और दूसरे वृक्ष के मूल में उनका पैर टिका हुआ था| थोड़ी देर बाद जब वे तपस्वी चले गये, तब बेर के वे दोनों वृक्ष पाँच-छः दिनों के भीतर ही सूख गये| उनमें पत्ते और डालियाँ भी नहीं रह गयीं| तत्पश्चात् वे दोनों वृक्ष कहीं ब्राह्मण के पवित्र गृह में दो कन्याओं के रूप में उत्पन्न हुए|

वे दोनों कन्याएँ जब बढ़कर सात वर्ष की हो गयीं, तब एक दिन उन्होंने दूर देशों से घूमकर आते हुए भरतमुनि को देखा| उन्हें देखते ही वे दोनों उनके चरणों में पड़ गयी और मीठी वाणी में बोलीं- 'मुने ! आपकी ही कृपा से हम दोनों का उद्धार हुआ है| हमने बेर की योनि त्यागकर मानव-शरीर प्राप्त किया है|' उनके इस प्रकार कहने पर मुनि को बड़ा विस्मय हुआ| उन्होंने पूछाः 'पुत्रियो ! मैंने कब और किस साधन से तुम्हें मुक्त किया था? साथ ही यह भी बताओ कि तुम्हारे बेर होने के क्या कारण था? क्योंकि इस विषय में मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है|'

तब वे कन्याएँ पहले उन्हे अपने बेर हो जाने का कारण बतलाती हुई बोलीं- 'मुने ! गोदावरी नदी के तट पर छिन्नपाप नाम का एक उत्तम तीर्थ है, जो मनुष्यों को पुण्य प्रदान करने वाला है| वह पावनता की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है| उस तीर्थ में

सत्यतपा नामक एक तपस्वी बड़ी कठोर तपस्या कर रहे थे। वे ग्रीष्म ऋतु में प्रज्जवलित अग्नियों के बीच में बैठते थे, वर्षाकाल में जल की धाराओं से उनके मस्तक के बाल सदा भीगे ही रहते थे तथा जाड़े के समय में जल में निवास करने के कारण उनके शरीर में हमेशा रोंगटे खड़े रहते थे। वे बाहर भीतर से सदा शुद्ध रहते, समय पर तपस्या करते तथा मन और इन्द्रियों को संयम में रखते हुए परम शान्ति प्राप्त करके आत्मा में ही रमण करते थे। वे अपनी विद्वत्ता के द्वारा जैसा व्याख्यान करते थे, उसे सुनने के लिए साक्षात् ब्रह्मा जी भी प्रतिदिन उनके पास उपस्थित होते और प्रश्न करते थे। ब्रह्माजी के साथ उनका संकोच नहीं रह गया था, अतः उनके आने पर भी वे सदा तपस्या में मग्न रहते थे।

परमात्मा के ध्यान में निरन्तर संलग्न रहने के कारण उनकी तपस्या सदा बढ़ती रहती था। सत्यतपा को जीवन्मुक्त के समान मानकर इन्द्र को अपने समृद्धिशाली पद के सम्बन्ध में कुछ भय हुआ, तब उन्होंने उनकी तपस्या में सैंकड़ों विघ्न डालने आरम्भ किये। अप्सराओं के समुदाय से हम दोनों को बुलाकर इन्द्र ने इस प्रकार आदेश दियाः 'तुम दोनों उस तपस्वी की तपस्या में विघ्न डालो, जो मुझे इन्द्रपद से हटाकर स्वयं स्वर्ग का राज्य भोगना चाहता है।'

"इन्द्र का यह आदेश पाकर हम दोनों उनके सामने से चलकर गोदावरी के तीर पर, जहाँ वे मुनि तपस्या करते थे, आयीं। वहाँ मन्द और गम्भीर स्वर से बजते हुए मृदंग तथा मधुर वेणुनाद के साथ हम दोनों ने अन्य अप्सराओं सहित मधुर स्वर में गाना आरम्भ किया। इतना ही नहीं उन योगी महात्मा को वश में करने के लिए हम लोग स्वर, ताल और लय के साथ नृत्य भी करने लगीं। बीच-बीच में जरा-जरा सा अंचल खिसकने पर उन्हें हमारी छाती भी दिख जाती थी। हम दोनों की उन्मत्त गति कामभाव का उद्दीपन करनेवाली थी, किंतु उसने उन निर्विकार चित्तवाले महात्मा के मन में क्रोध का संचार कर दिया। तब उन्होंने हाथ से जल छोड़कर हमें क्रोधपूर्वक शाप दियाः 'अरी ! तुम दोनों गंगाजी के तट पर बेर के वृक्ष हो जाओ।'

यह सुनकर हम लोगों ने बड़ी विनय के साथ कहाः 'महात्मन् ! हम दोनों पराधीन थीं, अतः हमारे द्वारा जो दुष्कर्म बन गया है उसे आप क्षमा करें।' यों कह कर हमने मुनि को प्रसन्न कर लिया। तब उन पवित्र चित्तवाले मुनि ने हमारे शापोद्धार की अवधि निश्चित करते हुए कहाः 'भरतमुनि के आने तक ही तुम पर यह शाप लागू होगा। उसके बाद तुम लोगों का मृत्युलोक में जन्म होगा और पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहेगी।1

"मुने ! जिस समय हम दोनों बेर-वृक्ष के रूप में खड़ी थीं, उस समय आपने हमारे समीप आकर गीता के चौथे अध्याय का जप करते हुए हमारा उद्धार किया था, अतः हम

आपको प्रणाम करती हैं| आपने केवल शाप ही से नहीं, इस भयानक संसार से भी गीता के चतुर्थ अध्याय के पाठ द्वारा हमें मुक्त कर दिया|"

श्रीभगवान कहते हैं- उन दोनों के इस प्रकार कहने पर मुनि बहुत ही प्रसन्न हुए और उनसे पूजित हो विदा लेकर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये तथा वे कन्याएँ भी बड़े आदर के साथ प्रतिदिन गीता के चतुर्थ अध्याय का पाठ करने लगीं, जिससे उनका उद्धार हो गया|

अनुक्रम

चौथा अध्याय: ज्ञानकर्मसन्यासयोग

तीसरे अध्याय के श्लोक 4 से 21 तक में भगवान ने कई प्रकार के नियत कर्मों के आचरण की आवश्यकता बतायी, फिर 30वें श्लोक में भक्ति प्रधान कर्मयोग की विधि से ममता, आसक्ति और कामनाओं का सर्वथा त्याग करके प्रभुप्रीत्यर्थ कर्म करने की आज्ञा दी| उसके बाद 31 से 35 वे श्लोक तक उस सिद्धान्त के अनुसार कर्म करने वालों की प्रशंसा और नहीं करने वालों की निन्दा की है तथा राग और द्वेष के वश में न होकर स्वधर्मपालन के लिए जोर दिया गया है| फिर 36वें श्लोक में अर्जुन के पूछने से 37वें श्लोक से अध्याय पूरा होने तक काम को सर्व अनर्थों का कारण बताया गया है और बुद्धि के द्वारा इन्द्रियों और मन को वश करके उसका नाश करने की आज्ञा दी गयी है, लेकिन कर्मयोग का महत्त्व बड़ा गहन है| इसलिए भगवान फिर से उसके विषय में कई बातें अब बताते हैं| उसका आरंभ करते हुए पहले तीन श्लोकों में उस कर्मयोग की परंपरा बताकर उसकी महिमा सिद्ध करके प्रशंसा करते हैं|

(अनुक्रम)

|| अथ चतुर्थोऽध्यायः ||

श्री भगवानुवाच
इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्|
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्||1||

श्री भगवान बोलेः मैंने इन अविनाशी योग को सूर्य से कहा था| सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा|(1)

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप।।2।।

हे परंतप अर्जुन ! इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु उसके बाद वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लुप्तप्राय हो गया।(2)

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।3।।

तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिए यह पुरातन योग आज मैंने तुझे कहा है, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है।(3)

अर्जुन उवाच
अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।4।।

अर्जुन बोलेः आपका जन्म तो अर्वाचीन – अभी हाल ही का है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है अर्थात् कल्प के आदि में हो चुका था। तब मैं इस बात को कैसे समझूँ कि आप ही ने कल्प के आदि में यह योग कहा था?(4)

श्री भगवानुवाच
बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।।5।।

श्री भगवान बोलेः हे परंतप अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किन्तु मैं जानता हूँ।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।।6।।

मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को आधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूँ।(6)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।7।।

हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।(7)

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।8।।

साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए, पाप कर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ।(8)

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।9।।

हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं – इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्व से जान लेता है, वह शरीर को त्याग कर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता, किन्तु मुझे ही प्राप्त होता है।(9)

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद् भावमागताः।।10।।

पहले भी जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे और जो मुझमें अनन्य प्रेमपूर्वक स्थिर रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहने वाले बहुत से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तप से पवित्र होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं।(10)

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।11।।

हे अर्जुन ! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ, क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।(11)

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा।।12।।

इस मनुष्य लोक में कर्मों के फल को चाहने वाले लोग देवताओं का पूजन किया करते हैं, क्योंकि उनको कर्मों से उत्पन्न होने वाली सिद्धि शीघ्र मिल जाती है।(12)

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्।।13।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – इन चार वर्णों का समूह, गुण और कर्मों के विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि – रचनादि कर्म का कर्ता होने पर भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू वास्तव में अकर्ता ही जान।(13)

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।।14।।

कर्मों के फल में मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिए मुझे कर्म लिप्त नहीं करते – इस प्रकार जो मुझे तत्त्व से जान लेता है, वह भी कर्मों से नहीं बँधता।(14)

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।।15।।

पूर्वकाल में मुमुक्षुओं ने भी इस प्रकार जानकर ही कर्म किये हैं इसलिए तू भी पूर्वजों द्वारा सदा से किये जाने वाले कर्मों को ही कर।(15)

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।16।।

कर्म क्या है? और अकर्म क्या है? – इस प्रकार इसका निर्णय करने में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। इसलिए वह कर्मतत्त्व मैं तुझे भली भाँति समझाकर कहूँगा, जिसे जानकर तू अशुभ से अर्थात् कर्मबन्धन से मुक्त हो जाएगा।(16)

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।17।।

कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए, क्योंकि कर्म की गति गहन है।(17)

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।18।।

जो मनुष्य कर्म में अकर्म देखता और जो अकर्म में कर्म देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान है और वह योगी समस्त कर्मों को करने वाला है।(18)

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।19।।

जिसके सम्पूर्ण शास्त्र-सम्मत कर्म बिना कामना और संकल्प के होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्नि के द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुष को ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।(19)

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः।।20।।

जो पुरुष समस्त कर्मों में और उनके फल में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्य तृप्त है, वह कर्मों में भली भाँति बरतता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता।(20)

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।।21।।

जिसका अन्तःकरण और इन्द्रियों के सहित शरीर जीता हुआ है और जिसने समस्त भोगों की सामग्री का परित्याग कर दिया है, ऐसा आशारहित पुरुष केवल शरीर-सम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पापों को नहीं प्राप्त होता।(21)

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।22।।

जो बिना इच्छा के अपने-आप प्राप्त हुए पदार्थ में सदा सन्तुष्ट रहता है, जिसमें ईर्ष्या का सर्वथा अभाव हो गया है, जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों में सर्वथा अतीत हो गया है

– ऐसा सिद्धि और असिद्धि में सम रहने वाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उनसे नहीं बँधता |

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।।23।।

जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गयी है, जो देहाभिमान और ममतारहित हो गया है, जिसका चित्त निरन्तर परमात्मा के ज्ञान में स्थित रहता है – ऐसा केवल यज्ञसम्पादन के लिए कर्म करने वाले मनुष्य के सम्पूर्ण कर्म भली भाँति विलीन हो जाते हैं |(23)

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।24।।

जिस यज्ञ में अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देनारूप क्रिया भी ब्रह्म है – उस ब्रह्मकर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किये जाने वाले योग्य फल भी ब्रह्म ही है |

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।।25।।

दूसरे योगीजन देवताओं के पूजनरूप परब्रह्म परमात्मारूप अग्नि में अभेददर्शनरूप यज्ञ के द्वारा ही आत्मरूप यज्ञ का हवन किया करते हैं |(25)

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।।26।।

अन्य योगीजन श्रोत्र आदि समस्त इन्द्रियों को संयमरूप अग्नियों में हवन किया करते हैं और दूसरे लोग शब्दादि समस्त विषयों को इन्द्रियरूप अग्नियों में हवन किया करते हैं |(26)

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।।27।।

दूसरे योगीजन इन्द्रियों की सम्पूर्ण क्रियाओं को और प्राण की समस्त क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित आत्मसंयम योगरूप अग्नि में हवन किया करते हैं।(27)

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।।28।।

कई पुरुष द्रव्य-सम्बन्धी यज्ञ करने वाले हैं, कितने ही तपस्यारूप यज्ञ करने वाले हैं तथा दूसरे कितने ही योगरूप यज्ञ करने वाले हैं, कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतों से युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करने वाले हैं।(28)

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।।29।।
अपरे नियतहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः।।30।।

दूसरे कितने ही योगीजन अपानवायु में प्राणवायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायु में अपानवायु को हवन करते हैं तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करने वालो प्राणायाम-परायण पुरुष प्राण और अपान की गति को रोक कर प्राणों को प्राणों में ही हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश कर देने वाले और यज्ञों को जानने वाले हैं।(29,30)

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम्।31।।

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ! यज्ञ से बचे हुए अमृतरूप अन्न का भोजन करने वाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं और यज्ञ न करने वाले पुरुष के लिए तो यह मनुष्यलोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक हो सकता है?(31)

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे।।32।।

इसी प्रकार और भी बहुत तरह के यज्ञ वेद की वाणी में विस्तार से कहे गये हैं। उन सबको तू मन इन्द्रिय और शरीर की क्रिया द्वारा सम्पन्न होने वाला जान। इस प्रकार तत्त्व से जानकर उनके अनुष्ठान द्वारा तू कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाएगा।(32)

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।33।।

हे परंतप अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है, तथा यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।34।।

उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भली भाँति दण्डवत प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म-तत्त्व को भली भाँति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।(34)

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि।।35।।

जिसको जानकर फिर तू इस प्रकार मोह को प्राप्त नहीं होगा तथा हे अर्जुन ! जिस ज्ञान के द्वारा तू सम्पूर्ण भूतों को निःशेषभाव से पहले अपने में और पीछे मुझे सच्चिदानन्दघन परमात्मा में देखेगा।(35)

अपि चेदसि पापेभ्य सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।।36।।

यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप-समुद्र से भलीभाँति तर जायेगा।(36)

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।37।।

क्योंकि हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को भस्ममय कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्ममय कर देती है।(37)

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।38।।

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है| उस ज्ञान को कितने ही काल से कर्मयोग के द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने आप ही आत्मा में पा लेता है|(38)

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।39।।

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलम्ब के, तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है|(39)

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।40।।

विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है| ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिए न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है|(40)

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।।41।।

हे धनंजय ! जिसने कर्मयोग की विधि से समस्त कर्मों को परमात्मा में अर्पण कर दिया है और जिसने विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश कर दिया है, ऐसे वश में किये हुए अन्तःकरण वाले पुरुष को कर्म नहीं बाँधते|(41)

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।।42।।

इसलिए हे भरतवंशी अर्जन ! तू हृदय में स्थित इस अज्ञानजनित अपने संशय का विवेकज्ञानरूप तलवार द्वारा छेदन करके समत्वरूप कर्मयोग में स्थित हो जा और युद्ध के लिए खड़ा हो जा| (42)

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः||3||
इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के

श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में ज्ञानकर्मसन्यासयोग नामक तृतीय अध्याय संपूर्ण हुआ।
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ